पं0 द्विवेदी एवं मिश्र के निबन्धों में मानवीय सम्वेदना

डॉ0 अभयनाथ सिंह*

पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी की साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने साहित्य को मनुष्य सत्य के संदर्भ में देखा है। मनुष्य को ही साहित्य का लक्ष्य स्वीकार किया है और उस सारे वाग्जाल को साहित्य मानने में संकोच प्रकट किया है, जो मनुष्य की आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके। उनके अनुसार–साहित्य वस्तुतः मनुष्य का वह उच्छलित आनन्द है जो उसके अन्तर में अटाये नहीं अट सका था ।(1)इस आनन्द का आधार एकत्व की अनुभूति है इस अनुभूति को ही हम मनुष्य का धर्म या मनुष्यता कह सकते हैं। इस प्रकार मनुष्यता का उच्छलन ही साहित्य का मर्म है ।इसलिए साहित्य की सभी विधाओं का मूल्यांकन मनुष्यता के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिए। मनुष्य की चरम–मनुष्यता–एकत्व की अनुभूति–समवेदना के आधार पर ही संभव है। समवेदना एक अपूर्व द्रावक रस है जो हमें दूसरों के लिए आत्मबलि देना सिखाता है।इसी समवेदना के विस्तार से हम संसार की नाना ज्ञानधाराओं की बाहरी विरोध मूलक स्थिति को भेदकर उनके मूल में मानव चेतना का अखण्ड विलास देख सकते है साहित्य मानव जीवन से सीधा उत्पन्न होकर सीधे मानव जीवन को प्रभावित करता है।साहित्य में उन सारी बातों का जीवन्त विवरण होता है। जिसे मनुष्य ने देखा है,अनुभव किया है,सोचा है और समझा है।(2) इसीलिए द्विवेदी जी ने मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है,मानव सत्य, सच्चा साहित्यकार, मानव धर्म, साहित्य का मर्म आदि निबन्धों में इसी मान्यता को अनेक प्रकार से व्यक्त किया है।द्विवेदी जी के निबन्धों की रमणीयता के प्रमुख कारण उनकी आत्मीयता एवं सजीवता है ।उनके चिन्तन का केन्द्रीय विषय 'मनुष्य' है। मनुष्य की जययात्रा पर उनका अखण्ड विश्वास है। संस्कृत, धर्म, दर्शन, विज्ञान तथा समस्त कला साधनाएं मनुष्य की जययात्रा के विजय उद्घोष है ।द्विवेदी जी ने इसी मनुष्य को अपने निबन्धों में उसके पूरे सांस्कृतिक परिवेश में मूर्त करने का प्रयास किया है । यही कारण है कि अशोक के फूल,नाखून क्यों बढ़ते हैं, देवदारू,कुटज,बसन्त आ गया है,वर्षा घनपति से धनश्याम तक,मेरी जन्मभूमि,घर जोड़ने की माया आदि निबन्ध हिन्दी निबन्ध साहित्य के क्लासिकल बन गये हैं।द्विवेदी जी के निबन्धों की आधार भूमि भारतीय संस्कृति है।किसी भी पुष्प पौधे,पशु या पक्षी को माध्यम बनाकर एक मनोरम भावभूमि की सृष्टि करते हुए भारत के अतीत और वर्तमान सांस्कृतिक जीवन की सरसता छू लेना द्विवेदी जी के लिए सहज व्यापार है।उनकी दृष्टि में साहित्य एवं जीवन की हर समस्या का एक सांस्कृतिक पहलू है,जिसका ज्ञान समस्या के उचित समाधान के लिए आवश्यक है।'साहित्य की नई मान्यताएं' शीर्षक निबन्ध में आधुनिक मानवतावाद की विशेषताओं पर विचार करते हुए द्विवेदी जी ने उसकी दुर्बलताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और थोड़ा आविष्ट होकर कहा है–मानवतावाद ठीक है ? पर मुक्ति किसकी क्या ? व्यकितमानव की ?नही?सामाजिक मानवतावाद ही उतम समाधान है। मनुष्य को,व्यष्टि मनुष्य को नहीं बल्कि समष्टि मनुष्य को आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक शोषण से मुक्त करना होगा । (3) तात्पर्य यह है कि द्विवेदी जी ने साहित्य में जिस मनुष्य की प्रतिष्ठा की है वह आत्मकेन्द्रित या आत्मलीन मनुष्य न होकर सामाजिक मानव है।द्विवेदी जी की मान्यता है कि लोक जीवन से सम्बन्धित ऋतुओं पुष्पों,पादयों,पर्वो और स्थानों के पीछे सहस्रों वर्षो का मानव इतिहास छिपा हुआ हैं इसलिए उन्होंने अपने निबन्धों में इतिहास से प्रेरणा लेकर उसमें रम जाते हैं और अनुभव करते हैं कि मनुष्य थका है पर रूका नहीं है। वह बढ़ता जा रहा है। इतिहास के अवशेष उसकी विजय यात्रा के पदचिह्न हैं ।(4)इस प्रकार द्विवेदी जीने अपने निबन्धों में एक प्रकार से भारत की खोज है। ऐसे भारत की खोज है,जो अपने रहन–सहन, पर्व–त्योहार, आचार–विचार, रीति–रिवाज, धर्म विश्वास, वेश–भूषा, खान–पान आदि में अलग–अलग होने पर भी भीतर से एक है। जिसने अंधकार से निकलकर प्रकाश में आने की साधना की है। जिसने दर्शन,धर्म और कला के माध्यम से मनुष्य सत्य को पहचाना है, जिसने मृत्यु में नहीं अमरत्व में विश्वास किया है।जिसने मनुष्य की अभिन्नता का अनुभव किया है।

* प्रवक्ता, हिन्दी, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रकसा, रतसर–बलिया (उ0प्र0)

निस्सन्देह आ0द्विवेदी के निबन्धों का अध्ययन एक सांस्कृतिक यात्रा है,ऐसी सांस्कृतिक यात्रा,जो मनुष्यता की सच्ची पहचान है।

पं0विद्यानिवास मिश्र हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा को विकसित करने वाले एक सफल हस्ताक्षर हैं। उनके व्यक्तित्व में संस्कृत साहित्य की अभिजात रसचेतना,आधुनिक भाव बोध एवं लोक जीवन की स्वच्छन्द प्राणमयी रसधारा का अद्भूत सामंजस्य है।उन्होंने कहा है–वैदिक सूक्तो के गरिमामय उद्गम से लेकर लोकगीतों के महासागर तक जिस अविच्छिन्न प्रवाह की उपलब्धि होती है,उस भारतीय भावधारा का मैं स्नातक हूँ। मेरी मान्यताओं का वही शाश्वत आधार है।मैं रेती में अपनी डोंगी नहीं चलाना चाहता और न जमीन के ऊपर बने रूँधे तालाबों में छपकोरी खेलना चाहता हूँ।(5) मिश्र जी भारत की महिमामय सांस्कृतिक चेतना,उदार जीवन पद्वति और व्यापक विश्व दृष्टि को पहचानने की निरन्तर कोशिश करते रहे हैं। यही कारण है कि उन्होने भारतीयता की पहचान के प्रायःसभी निबन्धों में भारतीय संस्कृति को नये संदर्भ में प्रस्तुत करनी की चेष्टा की है।बौद्धिक धरातल पर उच्चतर मूल्यों की व्याख्या में रत मिश्र जी का रससिक्त मन ठेठ गाँव का है।इसी मन ने मिश्र जी को नकली जिन्दगी जीने से बचाया है।उनके निबन्धों के सन्दर्भ में डा0रत्नलाल शर्मा ने कहा है–कभी वह छितवन की छाँह में दुबकना चाहते हैं,कभी कदम्ब की फूली डाल पर झूलना चाहते हैं,कभी आंगन के पंछी को निहारना चाहते हैं ।जिसमें बनजारा मन भटकता रहता है।कभी चन्दन और पानी की एकरूपता की बात कहते हैं।कभी फूल बीनने वाली के प्रति मुग्ध भाव प्रकट करते हैं तो कभी तमाल के झरोखे से झाँकने लगते हैं।इतना ही नहीं वह परम्परा को पूरे मनोयोग से स्वीकार करते हैं तथा राम के मुकुट भीगने पर स्वयं भीग जाते है।'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' मिश्र जी का एक प्रतीकात्मक सांस्कृतिक ललित निबन्ध है। इसमें मिश्र जी ने दो पीढ़ियों के भावनात्मक तादात्म्य पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है।जिस प्रकार राम के निर्वासित होने पर उनकी माँ कौशल्या अपने पुत्रों व पुत्रवधू के कष्टों की कल्पना मात्र से विह्वल हो जाती है,उसी प्रकार आज अनिश्चितता के परिवेश में कोई भी माँ अपने बच्चों के लिए सशंकित हो उठती है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसके राम का मुकुट भीग रहा है। इस निबन्ध में दुपट्टा,मुकुट और सिन्दूर शब्द सांस्कृतिक प्रतीक है।दुपट्टा–अस्मिता,मुकुट–सम्मान एवं सिन्दूर पवित्रता,सौभाग्य का प्रतीक है और संस्कृति प्रधान भारत के निवासी इन्हीं के लिए सतत चिन्तित रहते हैं। इस प्रकार मिश्र जी ने इस निबन्ध में कौशल्या के कष्ट को एक व्यापक धरातल प्रदान करते हुए जनसामान्य के कष्टों के साथ उसे जोड़ने की चेष्टा की है।

मिश्र जी की मान्यता है कि भारतीय समाज परम्पराबद्ध समाज रहा है।इतिहास बद्ध नहीं।परम्परा का अर्थ है पर के भी जो पर हो,श्रेष्ठ से भी जो श्रेष्ठतर हो ,जो न कभी भूत हो न भविष्यत जो सतत वर्तमान हो,जो कभी सिद्ध न हो, निरन्तर साध्य हो। परम्परा इसीलिए साधना का पर्याय है। (6) मिश्र जी आज की वस्तुवादी दृष्टि को वैज्ञानिकता के नकली दंभ की उपज मानते हैं। इस वस्तुवादी दृष्टि के कारण प्रकृति के प्रति हमारा आत्मीय भाव समाप्त होता जा रहा है। हममें भेददृष्टि बढ़ती जा रही है। हमारी समवेदना क्षीण होती जा रही है। हमें इससे मुक्त होना होगा और अपनी परम्परागत विरासत को स्वीकार करते हुए जीवन में रस की तलाश करनी होगी।

संक्षेपतः द्विवेदी एवं मिश्र जी ने अपने निबन्धों में मनुष्यता व जीवन मूल्यों के उच्चादर्शो का व्यापक धरातल प्रस्तुत किया है। जहाँ खड़ा होकर मनुष्य भारत के अतीत और वर्तमान सांस्कृतिक जीवन की सरसता को छू सकता है। साथ ही भारतीय संस्कृति की आदर्शवादी परम्परा के अधार पर मानवतावादी दृष्टिकोण अपना सकता है और 'असतो मा सद्गमय' की सूक्ति को चरितार्थ कर सकता है।

सन्दर्भ :

1. ज्ञान शिखा, संख्या 1, अक्टूबर 1951, पृ0–14
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, पृ0–3
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार–प्रवाह, पृ0–90
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुटज, पृ0 80
5. विद्यानिवास मिश्र, छितवन की छाँह, भूमिका
6. विद्यानिवास मिश्र, परम्परा बन्धन नहीं, पृ0–12